क्यों खाक छानते हो

कभी उठके चल देता हूं सुनहरी किरणों के साथ
मनमौजी हूं खुद के साथ बातें करता हूं तो कभी चिडियों के साथ
चलते चलते कोई दरवाजे या कोई दिल पे दस्तक देता हूं
बदले में कभी प्यार भरी बोली तो कभी गाली भी खाता हूं
बेवकूफ! क्यों आए हो इस रास्ते?
क्यों खाक छानते हो? कुछ नहीं हें यहां तुम्हारे वास्ते

बार बार वही सुनके में भी कभी सोचता हूं
असल में कुछ पाऊंगा ना? जो में अभी बोता हूं
आखिर में भी तो एक इन्सान हूं, मेरे भी कुछ अरमान हें
मिट गया अगर इस सफर में
कौन करेगा याद मुझे यह सडक भी तो सुनसान हें
ठोकरों से उठी चीख से ज्यादा मेरा सिसकना सुन लिया गया
वही बेजान सी जुबानें अलग अंदाज में करने लगी बयां
ऐसेही मरेगा आस्ते आस्ते
क्यों खाक छानते हो? कुछ नहीं हें यहां तुम्हारे वास्ते

किसीने इसे मेरी फितरत कहा तो किसीने इसे मेरा जुनुं कहा
तब अनसुना बनकर में चुपचाप अपने चलने की दूरी ताकता रहा
मुझे मालुम हें ये मेरा सिर्फ़ जुनुं ही नहीं ये मेरी मोहब्बत हें
दिल से दिल की बातें करना मेरी काबिलियत हें
राही हूं, निश्चित जानता हूं, एक जगह आकर तो मिलेंगे रास्ते
लोग चाहें बारबार कहते रहें
क्यों खाक छानते हो? कुछ नहीं हें यहां तुम्हारे वास्ते

कोई मुझे मुसाफिर कहता तो कोई कहता हें में फकीर हूं
में दिल में हसता हूं, में कोई भी सही
लेकिन चलना तो दोनों की तकदीर की समान लकीर हें
में तो चलता रहुंगा हंसते हंसते
तुम वही खडे रहो यह कहते
क्यों खाक छानते हो? कुछ नहीं हें यहां तुम्हारे वास्ते

आखिर में समझा, जिसे लोग खाक कहते हें
वह कुछ दिवानों की स्वप्नभुमी हें
हर एक दिवाने के साथ कदम मिलाकर चलने की आरजुं
यहां की मि ी में थमी हें
अब कोई मेरे साथ हें में इसीमें ही सुकुन पाता हूं
इस डगर की धुल में खाक बनकर मिलने की फिरसे कसम खाता हूं
साथ चलने वाले भी कभी चिल्ला उठे...
ये मुमकीन नहीं हें तुम्हारे जीते
क्यों खाक छानते हो? कुछ नहीं हें यहां तुम्हारे वास्ते

देखते ही देखते उस खाक पे में अपने पदचिन्ह बनाये चला हूं
गुजरी हुई राह में मिल के पत्थर के साथ अपने भी निशान छोड चला हूं
लोग अपनी एक ही रट लगाएं हें
अरे, मरेगा सस्ते...
क्यों खाक छानते हो? कुछ नहीं हें यहां तुम्हारे वास्ते

– अमित राऊत 'पंत', (निर्माण 1)